भाद्र कृष्ण १२, मंगलवार, दिनांक - २६-०९-१९६२
गाथा-२८, ३०, १११, १२४-१२५, १६८, १७५,
प्रवचन-२

..... तारणस्वामी का बनाया हुआ है। उसमें सम्यग्दर्शन का क्या स्वरूप है, उसका पहले कथन करते हैं। सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र (से) पहले सम्यग्दर्शन क्या है? धर्म की शुरुआत सम्यग्दर्शन से होती है तो सम्यग्दर्शन क्या है? लोग मानते हैं कि यह नौ तत्त्व और छह द्रव्य अथवा देव-गुरु-शास्त्र को मानना, वह सम्यग्दर्शन है। वह तो व्यवहार सम्यग्दर्शन उपचार से, बन्ध का कारण है, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन उपचार से कहते हैं। यथार्थ सम्यग्दर्शन अपना शुद्ध परमात्मस्वरूप, उसकी अन्तर में, राग पुण्य-पाप होने पर भी उसकी रुचि छोड़कर शुद्ध आत्मानन्द की अन्तर दृष्टि और अनुभव, श्रद्धा करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? यह पहले कहते हैं, आगे है। पृष्ठ १९९। पृष्ठ है पहले। ९९ पृष्ठ देखो पहले। ९९ है न उसमें? तुम्हारे ९९ नहीं। गाथा १७५ है। ज्ञानसमुच्चयसार गाथा १७५। क्या कहते हैं, देखो।

प्रथमं उवएस संमत्तं, सुध सार्धं सदा बुधैः।
दर्सनं न्यान मयं सुधं, संमत्तं सास्वतं धुवं॥१७५॥

कहते हैं कि **बुद्धिमानों को सदा प्रथम सम्यग्दर्शन का उपदेश करना चाहिए...** समझ में आया? पहली यह बात देखो। अभी उल्टी गंगा चली है। राग करो, पुण्य करो, व्रत करो, नियम करो, तप करो। यह तो सब शुभराग की क्रिया है। इसका उपदेश पहले नहीं होना चाहिए। पहले कहा न? '**प्रथमं उवएस संमत्तं, सुध सार्धं सदा बुधैः**' बुद्धिमानों को, ज्ञानियों को, आत्मार्थी को, मोक्षाभिलाषी को **सदा प्रथम सम्यग्दर्शन का उपदेश करना चाहिए...** लो, यह बात बदल गयी है। सेठ! तुमने भी दरकार नहीं की अभी तक।

मुमुक्षु : सुनी ही नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनी नहीं। बात तो सच्ची है।

पहले सम्यग्दर्शन क्या है? जो अपूर्व अनन्त काल में पहली भूमिका अविरत सम्यग्दर्शन चौथा गुणस्थान है, तो वह क्या है, उसका पहले उपदेश और उसकी पहले

श्रद्धा करनी चाहिए। .... देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, भक्ति, पूजा, व्रत शुभभाव आता है, परन्तु वह मोक्षमार्ग का कारण नहीं है। समझ में आया? और मोक्ष का यथार्थ कारण नहीं है। देखो, इसमें अभी झगड़े चलते हैं। बहुत झगड़ा चलता है कि व्यवहार मोक्षमार्ग है, व्यवहार में मार्ग पड़ा है। अब सुन तो सही। व्यवहारमार्ग तो मार्ग उपचार से, अन्यथा कथन से कहा गया है। .... **आप से आप ही यहाँ निजतत्त्व का अनुभव है।** उसे सम्यग्दर्शन, अविरत सम्यग्दर्शन, श्रावक, मुनिपना होने के पहले की बात है। शोभालालजी! यह तो श्रावक हो गया जहाँ हो वहाँ।

मुमुक्षु : यह तो सम्प्रदाय में ऐसा ही चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्प्रदाय में चले परन्तु वस्तु में ऐसा कहाँ है? थैली में अन्दर चिरायता भरा हो और ऊपर लिख दे शक्कर। तो क्या चिरायत मीठा हो जाता है? कोथली, थैली-थैली। थैली में भरा हो चिरायता, ऊपर लिखे शक्कर। चालीस रुपये मण शक्कर। चालीस रुपये की सेर शक्कर। तो क्या चिरायता मीठा हो जाता है? इसी प्रकार श्रावक नाम धरावे और मुनि नाम धरावे, परन्तु अपनी अन्तर स्वभाव शक्ति, शुद्ध चैतन्य अपने से अनुभव में आनेवाली चीज़ की दृष्टि हुई नहीं तो उसे श्रावक और मुनि नहीं कहा जाता। कदाचित् बाह्य व्रत पाले, पंच महाव्रत, बारह अणुव्रत, सब मिथ्या-मिथ्या है। बिना एक के शून्य जैसे मिथ्या है, वैसे सम्यग्दर्शन बिना वह व्रत और तप सब रण में शोर मचाने की बात है। रण में पोक समझते हो? अरण्य रुदन, अरण्य रुदन। अरण्य में रुदन करे, उसे कोई सुननेवाला नहीं है। इसी प्रकार तेरी आत्मश्रद्धा, आत्मज्ञान क्या है, उसकी प्राप्ति बिना व्रत, तप अरण्य में रुदन है। कड़क है, सेठ!

'संमत्तं स्थान सुधं' ओहो! आत्मा शुद्ध परमात्मा, उसकी प्रतीति, वही शुद्ध स्थान है। जहाँ बैठना चाहिए, वहाँ ही निवास करना चाहिए। अन्तर स्वरूप की दृष्टि करके वहाँ रहना चाहिए। रागादि अस्थिरता हो भले। वह तो मुनि को भी होती है न! परन्तु दृष्टि के विषय में वहाँ स्थिर होना चाहिए। वही तेरा बैठने का स्थान है। दुकान का धाम वहाँ है। दुकान की गद्दी पर बैठते हैं न? थड़ो कहते हैं? क्या कहते हैं? गद्दी। हाँ गद्दी। तो तेरी गद्दी वहाँ है, ऐसा कहते हैं। तेरी गद्दी शुद्ध स्वभाव का सम्यग्दर्शन

करना, वह तेरी गद्दी है। उस गद्दी पर बैठकर तेरे केवलज्ञान का व्यापार वहाँ होगा। समझ में आया? राग की गद्दी पर बैठने से, पुण्य की गद्दी पर बैठने से तुझे सम्यग्दर्शन भी नहीं होगा तो केवलज्ञान का व्यापार तो कहाँ से होगा? आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन ही शुद्ध स्थान है जहाँ बैठना चाहिए। यही लोक की निधि रहती है। 'निवसंति भुवने' जगत की परमार्थ निधि तो आत्मा में रहती है। जगत की चौदह ब्रह्माण्ड की सम्यक् निधि भगवान आत्म पदार्थ में है। उसकी प्रतीति करने से निधि वहाँ रहती है। समझ में आया? **'पंचदीप्ति परस्थितिं' पाँचों परमेष्ठियों में विराजता है।** सम्यग्दर्शन पाँचों ही परमेष्ठी में रहता है। ऐसा एक अर्थ किया है। वरना तो वास्तव में तो दूसरा अर्थ ऐसा होता है। **'पंचदीप्ति परस्थितिं'** जहाँ भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध का सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वहाँ ही पंचदीप्ति अर्थात् पंचम केवलज्ञान की परिस्थिति प्रगट होती है। केवलज्ञान का व्यापार वहाँ होता है। समझ में आया? गजब बातें, भाई! पंचदीप्ति प्रकाश है न प्रकाश? पंचम केवलज्ञान का प्रकाश उसमें है और पाँचों ही परमेष्ठी की दशा, दशा प्रगट करने का भी व्यापार अन्तर सम्यग्दर्शन स्वभावसन्मुख हुआ, उसमें व्यापार होता है। राग में, पुण्य में, विकल्प में, शरीर में पंच परमेष्ठी को पाने का व्यापार नहीं है। समझ में आया?

'संमत्तं ऊर्ध ऊर्धं' यह सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ में श्रेष्ठ है। मुख्य है। ज्ञान में, चारित्र में, तप में भी सबमें सम्यग्दर्शन मुख्य है। श्रेष्ठ में श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना उसका ज्ञान मिथ्या, उसका तप मिथ्या, उसका क्रियाकाण्ड चारित्र मिथ्या है। कहते हैं न पहले चारित्र पालन करो, चारित्र पालन करो, पश्चात् सम्यग्दर्शन हो जायेगा। धूल में भी नहीं होगा। सम्यग्दर्शन बिना तेरे व्रत-तप कहाँ से आये? फिर उपदेश देना, वह तो बराबर है। समझ में आया? वरना तो कहते हैं, देखो आगे है। देखो, यह आ गया न पृष्ठ ९५ लिखा है इसमें। पृष्ठ ९५ है। अविरत सम्यग्दृष्टि का ही उपदेश सच्चा है, ऐसा कहते हैं, भाई! ९५ है? हाँ, देखो। १६८ गाथा है। १६८। क्या कहते हैं?

अविरतं सुद्ध दिस्टी, च उपादेय गुन संजुत्तं।
मतिन्यानं च, संपूर्नं, उवएसं भव्यलोकयं॥१६८॥

अविरत सम्यग्दृष्टि भी ग्रहण करने योग्य गुणों का धारी होता है... अविरत अभी चौथे गुणस्थान में गृहस्थाश्रम में हो, चक्रवर्ती पद में हो, राजपद में हो। छियानवें हजार स्त्रियाँ चक्रवर्ती तीर्थंकर को होती हैं। सुना है या नहीं? शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती हैं। छियानवें हजार स्त्रियाँ हैं, परन्तु उस गृहस्थाश्रम में अविरत सम्यग्दर्शन लेकर तो स्वर्ग में से आये हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि लेकर स्वर्ग में से आये हैं। तो कहते हैं कि **सम्यग्दृष्टि भी ग्रहण करने योग्य गुणों का धारी होता है...** सम्यग्दृष्टि तो अन्तर शुद्ध आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, उसे उपादेय मानता है। पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, विकल्प को उपादेय मानता नहीं। उपादेय समझते हो? आदरणीय। अंगीकार करनेयोग्य सम्यग्दृष्टि चौथेवाला भी मानता नहीं। और **उसको यथार्थ मतिज्ञान होता है...** देखो! चौथे गुणस्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि को मतिज्ञान और श्रुतज्ञान यथार्थ होता है।

मुमुक्षु : दोनों के लिये सम्पूर्ण शब्द प्रयोग किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सम्पूर्ण बराबर है न। मतिज्ञान सम्पूर्ण। वह सम्पूर्ण ही है। सम्यग्ज्ञान यथार्थ हुआ, वह सम्पूर्ण ही है। सम्पूर्ण केवलज्ञान की प्राप्ति उससे होती है, वह मतिज्ञान सम्पूर्ण साधन है।

'उवएसं भव्यलोकयं' उसका उपदेश भी भव्य जीवों को यथार्थ होता है। देखो, **'उवएसं भव्यलोकयं'** भव्य लोक को उपदेश सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाले का यथार्थ होता है। मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंग धारण करे, अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, नौ पूर्व पढ़े, ग्यारह अंग पढ़े, उसका उपदेश यथार्थ नहीं। त्यागी हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, हजारों रानियों का त्याग किया हो। सम्यग्दर्शन का भान नहीं, आत्मज्ञान क्या है, उसकी खबर नहीं। उसका उपदेश (यथार्थ नहीं)। सम्यग्दृष्टि हजारों रानियों में पड़ा हो, विषयभोग की वासना में पड़ा हो, तथापि अन्तर में अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थान प्रगट हुआ है तो उसका उपदेश यथार्थ निकलता है। एक भी अक्षर का विरोध उसमें होता नहीं। समझ में आया? सेठ! यह चौथे गुणस्थान में उपदेश यथार्थ निकलता है, कहते हैं। देखो, पहले पाँचवाँ (गुणस्थान) श्रावक नहीं होता। छठवें गुणस्थान में मुनि का तो भव्यलोक के लिये सच्चा उपदेश निकलता है। समझ में आया? पीछे भी है न?

उवएसं च जिनं उक्तं, सुद्ध तत्त्व समं धुवं।
मिथ्या माया न दिस्टंते, उवएसं सास्वतं पदं॥१६९॥

सम्यग्दृष्टि जिनेन्द्र भगवान ने जैसा कहा है, वैसा यथार्थ उपदेश देता है... देखो, है? १६९। पीछे है? कितना भरा है! एक-एक लाईन को समझे तब न! विचार करते नहीं। समझ में आया? **सम्यग्दृष्टि जैनेन्द्र...** देखो, पाठ है न, '**जिनं उक्तं**' वीतराग जिनेन्द्र त्रिलोकनाथ परमात्मा देवाधिदेव ने जो उपदेश कहा, जैसा कहा वैसा यथार्थ उपदेश देता है। गृहस्थाश्रम में भले हो, स्त्री-कुटुम्ब में हो, धन्धा-पानी में हो। समझ में आया? परन्तु सम्यग्दृष्टि आत्मा के स्वभाव का भान हुआ, जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि में जैसा यथार्थ उपदेश आता है, ऐसा ही वह कहता है। उसमें रंचमात्र भी उपदेश में अन्तर होता नहीं। यहाँ तो जरा बाह्य त्याग हो न। बस, वह साधन। भले मिथ्यादृष्टि हो। राग को धर्म मानता हो, राग को—पुण्य को (धर्म मानता हो)... वह अन्दर है। वह पुण्य का समझे न? कुछ है अवश्य। पुण्य का योग... पुण्य का योग... है। भाई! पृष्ठ ६७ में है कुछ। पृष्ठ ६७। पृष्ठ ६७ है देखो। १२४ गाथा। १२४।

लोभं पुन्यार्थं जेन, परिनामं तिस्टते सदा।
अनंतानुलोभ सद्भावं, तिक्तते सुध दिस्टितं॥१२४॥

देखो, क्या कहते हैं? '**जेन पुन्यार्थं लोभं परिनामं**' **जिसके भीतर पुण्य की प्राप्ति के लिये लोभ भाव सदा रहता है, उसके अनन्तानुबन्धी लोभ का प्रकाश है...** समझ में आया? चन्दुभाई! क्या कहा समझ में आया? पर्याय में राग है दया, दान, विकल्प हो, शुभभाव हो, परन्तु उसका लोभ—उससे मुझे लाभ होगा, ऐसा लोभ रहता है तो वह अनन्त संसार का वर्धक अनन्तानुबन्धी लोभ गिनने में आया है। चिल्लाहट मचा जाये दूसरे लोग तो। अरर! समझ में आया? देखो, '**लोभं पुन्यार्थं जेन, परिनामं तिस्टते सदा**' सदा ही राग की रुचि, पुण्य की रुचि, शुभ की रुचि, वह मुझे लाभदायक होगा, उससे मुझे लाभ होगा, उससे मुझे धर्म होगा। करते रहो भाई शुभराग कषाय मन्द, एकबार बेड़ा पार हो जायेगा। कहते हैं कि ऐसा कहनेवाला अनन्तानुबन्धी लोभी है। समझ में आया? अनन्त अनुबन्ध। अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व, उसके साथ अनुबन्ध

करनेवाली कषाय उसके पास पड़ी है। समझ में आया? आहाहा! बात तो बहुत की है ज्ञानसमुच्चयसार में भी। परन्तु वाँचते नहीं, विचारते नहीं और समय मिलता नहीं। कमाने का समय मिलता है। भाई! उलाहना तो सुनना पड़े या नहीं? सेठ! उलाहना तो सहना पड़े या नहीं? सबको धन्धे का समय मिलता है, परनतु सच्ची समझ करने का समय नहीं मिलता। तो कहते हैं कि समझ में आया? क्या कहा? क्या कहाँ इसमें? ...

अनन्तानुबन्धी लोभ का प्रकाश है, इसलिए सम्यग्दृष्टि पुण्य का लोभ भी छोड़ देता है। पुण्य परिणाम होता है, परन्तु उसका लोभ, उससे लाभ, यह दृष्टि छोड़ देता है। कहो, बराबर है? पण्डितजी! कैसा अभी तक उपदेश दिया? उपदेश तो पहले क्षुल्लक थे तो दिया तो होगा या नहीं? क्या कहते हैं? तुम राग करो, कषाय करो, उसमें से कुछ लाभ होगा। देखो, पण्डित कहते हैं कि हमने ऐसा दिया, तो सेठ क्या करे? खबर नहीं होती। इस चीज़ की खबर नहीं। सम्यग्दृष्टि ऐसा लोभ भी छोड़ देता है। अरे! यह तो कहते हैं विशेष १२५ (में) भाई!

लोभं स्त्रुत तपं कृत्वा, व्रत क्रिया अनेकधा।
न्यान हीनो अनन्तानं, तिक्तते सुध दिस्टितं॥१२५॥

अनन्तानुबन्धी लोभसहित... अज्ञानी राग से .... **शास्त्र अनेक प्रकार पढ़े, अनेक तरह के तप तपे व अनेक तरह के व्रत पाले तो भी आत्मज्ञानरहित है, अतएव सम्यग्दृष्टि उसे त्याग देता है।** ऐसा कोई भी त्यागी हो, परन्तु सम्यग्दर्शन का भान नहीं, राग से धर्म मनावे, छोड़ दो, उसका आदर न करो। त्यागी हो तो भी उसका आदर न करे। उसके पास अनन्तानुबन्धी लोभ है। राग से लाभ बतलाता है। कषाय से लाभ? वीतरागमार्ग किसे कहते हैं? वीतरागमार्ग में वीतरागभाव से लाभ होगा या राग से लाभ होगा? होता है, पुण्य आता तो है। पंच महाव्रत का आता है, श्रवण का आता है, गणधर को आता है, मुनि को आता है, भक्ति का आता है, पूजा का आता है। दान, दया का आता है परन्तु उसकी ऐसी रुचि करना कि उससे मुझे धर्म होगा, तो कहते हैं कि ऐसे माननेवाले को '**तिक्तते**' सम्यग्दृष्टि उसका आदर नहीं करता। छोड़ देता है, तेरी दृष्टि मिथ्यात्व है। समझ में आया?

देखो, तप तपे और **सम्यग्दृष्टि उसे त्याग देता है।** अनन्तानुबन्धी लोभ की व्याख्या है। समझ में आया? पश्चात् भी कहा न?

लोभं स्त्रुत तपं कृत्वा, व्रत क्रिया अनेकधा।
न्यान हीनो अनन्तानं, तिक्तते सुध दिस्टितं॥१२५॥

लोभ कषाय अनेक तरह के भेदरूप अशुभ कार्यों का मूल शास्त्र में कहा गया है, इसलिए शुद्ध साधन करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी लोभ का विश्वास छोड़ देते हैं। राग का विश्वास छोड़ देते हैं, अनन्तानुबन्धी का लोभ है। सम्यग्दृष्टि उसे छोड़ देता है। वरना आगम का द्रोही होता है। समझ में आया? देखो, पृष्ठ ६०। यह आगम में प्रवेश करना। यहाँ तो सम्यग्दर्शन का विषय है न, इसलिए उसका कहा देखो। क्या कहते हैं, देखो १११ गाथा है। १११।

समय सुद्धं जिनं उक्तं, ति अर्थ तीर्थंकरं कृतं।
समयं प्रवेस जेनापि, ते समयं सार्धं धुवं॥१११॥

१११। क्या कहते हैं देखो! यहाँ सम्यग्दृष्टि अपनी निधि में क्या जानता है? और किसका उसमें प्रवेश है? कि **शुद्ध या निर्दोष आगम के वक्ता श्री जिनेन्द्र हैं...** शुद्ध आगम और ध्रुव सत्य की बात करनेवाले त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र वीतराग एक ही हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे कोई सत्य के वक्ता नहीं हैं। **'ति अर्थ तीर्थंकरं कृतं' संसार से तारनेवाले रत्नत्रयमयी धर्म का कथन तीर्थंकरों ने किया है। 'ति अर्थ तीर्थंकरं कृतं'** यह तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने तीर्थ अर्थात् तिरने का उपाय बताया है। इसके अतिरिक्त दूसरे किसी ने बताया नहीं। कहो, यह तारणस्वामी कहते हैं कि तीर्थंकरों ने कहा है। अब इसके साथ दूसरे को मिलाना? समझ में आया? शोभालालजी! यह तुम्हारे सेठ के पुस्तक में भी दूसरे की बात घुसा दी है। खबर नहीं, क्या करे? खोटा रुपया भी चला देते हैं सेठ। सच्चा सेठ हो तो खोटा रुपया चलावे? जड़ दे, चलावे नहीं। कहते हैं न! तीर्थंकरों ने सच्चा उपदेश त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेवाधिदेव वीतराग, जिन्होंने राग से लाभ नहीं, ऐसा उपदेश कहा है। उन्होंने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागीदशा का उपदेश किया है।

जो कोई इस जिन आगम में प्रवेश करता है... देखो, **'जेनापि समयं प्रवेस'** ऐसे जिनागम में प्रवेश करता है, अभ्यास करता है तो उसमें वीतरागता झलकती है। देखो, पश्चात् आता है न। **'ते धुवं समयं सार्धं' उसी ने ही निश्चय आत्मा का साधन किया है।** क्योंकि आगम जो सर्वज्ञ का आगम है, उसमें रागरहित शुद्ध आत्मा का साधन करने से सम्यग्दर्शन होता है। इस प्रकार आगम में प्रवेश करने से ऐसा निकलता है। आगम में से कोई ऐसा निकाले कि राग से, पुण्य से, निमित्त से लाभ होता है तो वह आगम नहीं, परन्तु कुआगम है। समझ में आया? साध्य ध्रुव है न? इसके बाद भी है, भाई! जरा देखो। ११२। इससे विरुद्ध है, देखो।

धुव समयं च जानति, अनेयं राग बन्धनं।
दुर्बुद्धि विषय होंति, समय मिथ्या च उच्यते ॥११२॥

'धुव समयं च जानति,' जिसमें निश्चय शुद्ध आत्मा का ज्ञान न हो... अकेला आत्मा भगवान पवित्र, पुण्य-पाप और निमित्त से रहित की श्रद्धा-ज्ञान का जिसमें उपदेश न हो और **अनेक राग भावों में बाँधनेवाली बातें हो...** देखो, पुण्य और राग करो... राग करो... कषाय मन्द करो, ऐसी बाँधने की जिसमें बात हो, **जिसमें मिथ्या बुद्धि से लिखे गये विषय हों...** राग से लाभ मानने का विषय जिसमें लिखा हो, वह आगम नहीं है। वह आगम नहीं, वह तो कुआगम है। जिसमें पुण्य-पाप के परिणाम से लाभ मनाया हो तो वह कुआगम है। तो आगम-कुआगम का भी इसे विवेक करना चाहिए। तो **'समय मिथ्या च उच्यते' उसको मिथ्या आगम कहते हैं।** ऐसा उपदेश करनेवाले को मिथ्या कहते हैं।

यहाँ अपने यह चलता है। समझ में आया? क्या कहा? क्या आया? **'ऊर्ध ऊर्ध'** ऊर्ध्वगामी कहा न? २७ हो गयी न? २८ चलती है। देखो, ऊर्ध्वगामी स्वभाव। क्या कहा? **जहाँ अनन्त स्वभाव-आत्मा का स्वभाव झलक जाता है, निर्मल गुणों की खान है, आपसे आप ही जहाँ निज तत्त्व का अनुभव है...** उसमें से यह शब्द निकाला है। क्या कहते हैं? जिस आगम में ऐसा लिखा हो कि विकल्प और आस्रव से लाभ होता है, उसका अभ्यास करना, वह मिथ्या शास्त्र का अभ्यास है। देखो! **'स्वयमेव सुयं**

तत्त्वं' जिसका सहजानन्द प्रभु अपना स्वभाव अपने स्वभाव के साधन से ही प्राप्त होता है। विभाव का बिल्कुल उसमें आश्रय और आधार है ही नहीं। ऐसा आगम का उपदेश जिसमें लिखा हो, उसे आगम कहते हैं। और राग से लाभ मानने का लिखा हो, वह आगम नहीं, वह कुआगम है। समझ में आया? कितना स्पष्ट किया है कि किसे आगम कहना और किसे कुआगम कहना। समझ में आया?

और **'पंचदीप्ति परस्थितं' 'ऊर्ध ऊर्ध,' श्रेष्ठ में श्रेष्ठ है।** सम्यग्दर्शन तो श्रेष्ठ में श्रेष्ठ वस्तु है। उससे तो आगे चलते-चलते **यही कमल के पत्ते पर जल बूँद के समान है।** पानी का बिन्दु। राग से, पर से स्पर्शरहित चीज़ है। स्पर्शे नहीं। यह पानी की बूँद, पानी की बूँद है न वह? कमल को स्पर्शती नहीं। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन अन्दर में व्यवहाररत्नत्रय के राग को स्पर्शता नहीं। समझ में आया? पहले तो बात समझना कठिन पड़ती है। अभ्यास नहीं, सुने नहीं। 'मूल मार्ग सुन लो जिनवर का रे।' यह श्रीमद् कहते हैं। 'मूल मार्ग सुन लो जिनवर का रे।' वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा तो वीतराग थे। तो वीतराग का मार्ग तो वीतरागभाव से शुरु होता है न? या राग से शुरु होता है? राग से शुरु हो, वह वीतरागमार्ग है ही नहीं। पहले सम्यग्दर्शन से (शुरु होता है)।

तो कहते हैं कि **यही कमल के पत्ते पर जल बूँद के समान है। आकाश में गमन स्वभाव है अर्थात् आकाश तुल्य निर्मल भाव में परिणमनस्वभाव है।** सम्यग्दर्शन। आकाश में जैसे रंग, राग नहीं, वैसे अपने शुद्ध स्वभाव त्रिकाल की दृष्टि में भी राग का रंग—चित्राम नहीं है। आकाश में चित्राम कहते हैं न? दीवार पर चित्राम करते हैं। आकाश में होता है? नहीं होता। इसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध निर्विकल्प आनन्द की प्रतीति, सम्यग्दर्शन, उसमें भी राग का रंग चढ़ता नहीं। वह रागरहित वीतरागदृष्टि है। सम्यग्दर्शन वीतरागदृष्टि है। चौथे गुणस्थान में। समझ में आया? कैसी दृष्टि? वीतरागदृष्टि। वीतराग विज्ञानघन आत्मा है, ऐसी दृष्टि है। आकाश में जैसे निर्मलता है, चित्राम नहीं, वैसे ही भगवान सम्यग्दर्शन पर्याय में राग है ही नहीं, राग भिन्न है, उसे ज्ञान जानता है। अपने सम्यग्दर्शन के साथ राग का सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? लो, यह गाथा हुई, इसका अर्थ हुआ।

अब २९ गाथा।

तं संमत्तं कलस ससिनं, सयल गुणनिहि भवन विंद प्रविंदि।
संमत्तं क्रांति क्रान्त्यं, त्रिभुवन निलयं जोतिरूपस्य क्रांति॥
तं संमत्तं तिस्टिनत्वं, परम पयं धुवं सुद्ध बुद्धं चतुस्टं।
जोयंतो जोग जुक्तं, समयं धुव पदं तत्त्व विंदं संविंदिं॥२९॥

समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो, क्या कहते हैं यहाँ? ज्ञानसमुच्चयसार, तारणस्वामीकृत। उसमें सम्यग्दर्शन का विषय चलता है और सम्यग्दर्शन का माहात्म्य क्या? स्वरूप क्या? निधि दृष्टि में पड़ी है, यह उसकी बात चलती है। **सम्यग्दर्शन... 'संमत्तं कलस ससिनं,' चन्द्रमा के बिम्ब के समान प्रकाशित है... 'ससिनं'** चन्द्रमा का बिम्ब है। वैसे सम्यग्दर्शन, राग और विकल्प होने पर भी उनसे पृथक् होकर अपने स्वभाव की प्रतीति ज्ञान का अनुभव, वह चन्द्रमा के कलश समान है। और चन्द्रमा जैसे अखण्ड दिखता है, वैसे सम्यग्दर्शन का विषय भी अखण्ड आत्मा है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का विषय अखण्ड आत्मा है। कलश (अर्थात्) वह तो कहा न! बिम्ब समान। बिम्ब। '**ससिनं**' चन्द्रमा बिम्ब। कलश अर्थात् बिम्ब, बिम्ब कहा है। दिखाव है न कलश जैसा, कलश जैसा बिम्ब समान। '**संमत्तं**' चन्द्रमा अर्थात् '**ससिनं**' '**कलस**' अर्थात् बिम्ब। कलश जैसा दिखता है न ऐसे? जैसे कलश दिखता है, वैसा बिम्ब दिखता है। क्या कहा?

भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप परमानन्द की मूर्ति अनादि-अनन्त ध्रुव पड़ा है ज्ञायकभाव, उसकी अन्दर सम्यग्दर्शन—प्रतीति हुई तो वह चन्द्रमा के बिम्ब समान है। निर्मल प्रकाशमय है। उसमें मलिनता है नहीं। और '**सयल गुणनिहि**' बहुत बार आता है यह तो। **सर्व गुणों की खान है।** आत्मा भी सर्व गुणों की खान और सम्यग्दर्शन की प्रतीति में सर्व गुण की खान। उसमें से सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र शुक्लध्यान होकर केवलज्ञान होता है। मिथ्यादृष्टि बाह्य त्याग आदि करे, परन्तु उसमें कुछ लाभ होता नहीं। समझ में आया?

और '**भवन विंद प्रविंदि**' '**भवन विंद प्रविंदि**' **तीन भुवन के वृन्द अर्थात्**

प्राणियों से वन्दनीक है। वृन्द है न? '**भवन विंद**' तीन लोक के वृन्द अर्थात् प्राणियों से '**प्रविंदि**' वन्दनीक है। सम्यग्दर्शन चाण्डाल को भी होता है। चाण्डाल-चाण्डाल। आता है न रत्नकरण्डश्रावकाचार में? तो कहते हैं कि ऊपर से शरीर मलिन हो, काला हो, चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुआ हो, जैसे अग्नि राख से दबी हुई हो। दबी हुई कहते हैं न? दबी हुई हो। राख में अग्नि दबी हुई हो, वैसा चाण्डाल का शरीर दिखता है। काला ऐसा। परन्तु अन्दर चैतन्य के प्रकाश का सम्यग्दर्शन यदि हुआ हो तो अग्नि राख से दबी हुई जैसी है। और उसे देव कहा गया है, रत्नकरण्डश्रावकाचार में। सम्यग्दृष्टि चाण्डाल हो तो भी देव तुल्य है, जिसका देव भी आदर करते हैं। समझ में आया? और मिथ्यादृष्टि ने हजारों रानियों का त्याग (किया हो) और पंच महाव्रत पालता हो और अट्ठाईस मूलगुण भी पालता हो, नौ वाड से ब्रह्मचर्य पालता हो, परन्तु राग और देह की क्रिया मुझसे होती है और मुझे लाभदायक है, ऐसे मिथ्यादृष्टि का सब त्याग रण में शोर मचाने जैसा है। समझ में आया? पोक अर्थात् अरण्यरुदन है। पोक हमारे यह रोवे, उसे पोक कहते हैं।

क्या कहते हैं? ओहो! **तीन भुवन के प्राणियों से वन्दनीक है। 'संमत्तं क्रांति क्रान्त्यं,' सम्यग्दर्शन की कान्ति या शोभा से तीन जगत का घर प्रकाशित है...** यह सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसने आत्मा की क्रान्ति की। समझ में आया? क्रान्ति हुई। क्या धूल क्रान्ति? बाहर में क्रान्ति होती है? अपना स्वरूप शुद्ध राग से रहित, उसकी प्रतीति और ज्ञान को क्रान्ति कहते हैं। क्रान्ति की। यह लोग कहते हैं न, इसने क्रान्ति की। धूल में भी नहीं करता, सुन तो सही। सम्यग्दर्शन की क्रान्ति, वही प्रकाशित घर यथार्थ है। और **शोभा से तीन जगत का घर प्रकाशित है अर्थात् सम्यग्दर्शन की शोभा जगतव्यापी है...** चौदह ब्रह्माण्ड में सम्यग्दर्शन की महिमा है। शूरवीर तो सम्यग्दृष्टि, पण्डित तो सम्यग्दृष्टि, सबमें विवेकी तो सम्यग्दृष्टि, जगत के चक्षु यथार्थ भानवाला तो सम्यग्दृष्टि। समझ में आया? अभी तो सम्यग्दर्शन की महिमा।

ओहो! **सम्यग्दर्शन की शोभा जगतव्यापी है...** चौदह ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। ऊर्ध्व, मध्य और अधो—नरक में भी सम्यग्दर्शन है, तो वहाँ से देखो तीर्थंकरगोत्र बाँधकर वहाँ रहे हैं। श्रेणिक राजा वहाँ हैं। श्रेणिक राजा चौरासी हजार वर्ष की स्थिति

में पहले नरक में गये हैं। अभी चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में वहाँ हैं। वहाँ से निकलकर... वहाँ भी समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। वहाँ चौथा गुणस्थान है। समय-समय में... (वहाँ से) निकलकर देवाधिदेव आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। श्रेणिक राजा पहले नरक से निकलकर। समझ में आया?

तो कहते हैं, **सम्यग्दर्शन की शोभा जगतव्यापी है...** और **'जोति रूपस्य क्रांति' यह सम्यग्दर्शन परम ज्योतिमय आत्मा की क्रान्ति है...** देखो! आत्मा की क्रान्ति है। कोई पुण्य किया और पुण्य से फल मिला, कोई स्वर्ग मिला, वह कहीं आत्मा की क्रान्ति नहीं। कोई बड़ा पुण्य बाँधा। समझ में आया? स्वर्ग का पुण्य बँधा। एक-एक... यशकीर्ति ऐसी सातावेदनीय बाँधी। वह आत्मा की क्रान्ति नहीं। उसमें आत्मा की तो हीनता है। आत्मा की क्रान्ति (अर्थात्) भगवान आत्मा शुद्धता का अन्तर श्रद्धा से अभ्यास कर। सम्यग्दर्शन की क्रान्ति की, उसने सब क्रान्ति की। समझ में आया? और **'तं संमत्तं तिस्टिनत्वं' इस सम्यग्दर्शन का अनुभव करना योग्य है।** अर्थात् देखनेयोग्य अर्थात् अनुभव करना। यह सम्यग्दर्शन का ही अनुभव करनेयोग्य है।

'परम पयं धुवं' यह अविनाशी उत्तम पद है... उससे अविनाशी उत्तम पद प्राप्त होता है तो सम्यग्दर्शन को ही अविनाशी पद कहने में आता है। मिथ्या अभिप्राय राग-द्वेष सब नाशवान है। अविनाशी स्वभाव की दृष्टि हुई तो वह दृष्टि अविनाशी पद को देनेवाली है। **'सुद्ध बुद्धं चतुस्टं' जहाँ शुद्ध बुद्ध चार चतुष्टय आकर विराजते हैं...** क्या कहते हैं? आत्मा... दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। सम्यग्दर्शन की भूमिका में आगे बढ़कर उसमें अनन्त चतुष्टय (प्राप्त करेगा)। ऐसी निधि-निधान सम्यग्दर्शन के वर्णन में इतने गीत गाये हैं। अध्यात्म की वाणी में तो बारम्बार यह कथन चलता है। उसमें पुरुक्तिदोष है नहीं। यह एक बात तो बारम्बार लेते हैं। दूसरे ग्रन्थ में भी ली है, परन्तु बात थोड़ी है। समझ में आया? परन्तु बारम्बार... भावना का ग्रन्थ है न, तो बारम्बार घोंटते हैं। वहाँ समाधिशतक बारम्बार यह एक का एक भाव करके सम्यक् भावना करते हैं। जैसे राग की, पुण्य की और विकार की अनन्त काल से बारम्बार भावना की मिथ्याज्ञान में, तो उससे रहित आत्मा की बारम्बार अन्तर भावना करना। समझ में आया? आहार लेते हैं।

हमेशा आहार दाल-भात-रोटी... दाल-भात-रोटी... कभी उकताहट आयी? क्योंकि वह पोषण की चीज़ है। हमेशा देखो तो रोटी-दाल-भात-सब्जी, रोटी-दाल-भात-सब्जी। कभी ऐसा हो कि आज पकवान करो या ढोकला। ढोकला को क्या कहते हैं तुम्हारे? कुछ होगा तुम्हारे। यहाँ ढोकला होते हैं चावल के। किसी समय होते हैं। वरना रोटी, दाल, भात और सब्जी। इसी प्रकार आत्मा का आहार स्वाध्याय करके आत्मा के अनुभव की दृष्टि बारम्बार करना, वह आत्मा का आहार है। समझ में आया? नया-नया बनता है न तुम्हारे? लड्डू बनावे और ऐसे बनावे और धूल बनावे। वह सब—धूल ही है न! दूसरा क्या है? दूधपाक बनावे। विष्टा है विष्टा। आठ घण्टे में विष्टा होगी। क्या है उसमें? वर्तमान में भी क्या है? वह दूधपाक और गुलाबजामुन, है न गुलाबजामुन है न। मुँह में डाले तो पाँच मिनिट में तो रस हो जाता है। उसका रस ऐसा कि मुख देखे दर्पण में तो कुत्ते की ऐंठ है। नीचे उतारे। क्या खाया? अरे! गुलाबजामुन खाये। मावा के होते हैं न। गुलाबजामुन भी ... खबर है? पाँच सेकेण्ड में थूक हो गया। लार... लार... लार... हाथ में ले न पहले, फिर गले में उतारना। उसका आहार हमेशा करना। और आत्मा आनन्दमय, चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, राग से पृथक् होकर अपना बारम्बार श्रद्धा, ज्ञान का अभ्यास करना। वह अपनी निधि बारम्बार हमेशा का आहार है। समझ में आया? वह आहार छोड़कर दूसरा आहार लेते हैं, अनादि से पर का अभ्यास हो गया है।

यही अविनाशी उत्तम पद है, जहाँ शुद्ध बुद्ध चार चतुष्टय आकर विराजते हैं, सम्यग्दृष्टि ही अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य का स्वामी है... 'जोगजुक्तं जोयंतो' 'जोगजुक्तं' का वास्तविक अर्थ तो स्वभाव सन्मुख का जुड़ान करके। भले योगाभ्यास किया है, परन्तु योगाभ्यास का अर्थ यह योग। लोग कहते हैं योगाभ्यास, ऐसा नहीं। समझ में आया? नाडी करो और ऐसा करो और वैसा करो, कहते हैं न लोग? अन्दर में विचार करे... यह नहीं। **'जोगजुक्तं'** अपना जो पवित्र शुद्ध वीतरागघन ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है, उसमें जुड़ान करना। जुड़ान को क्या कहते हैं? मिलान। उसके साथ जुड़ान करे। हमारी भाषा में जोडाण कहते हैं। हमारे जोडाण (शब्द है)। जोड़ देते हैं। अपनी वर्तमान पर्याय को त्रिकाल के साथ जोड़ देते हैं।

एकता। अनुसन्धान करे उसका नाम योगाभ्यास है। यह योगाभ्यास दुनिया करती है... ऐसा और वैसा, यह हमारे वैदराज ने बहुत किये हैं। ढोंग-ढोंग। ऐसा करना और वैसा करना। कुम्भक। ऐसे श्वास डालना (लेना)। रेचक—निकाल लेना। है न कुम्भक और रेचक ऐसा सब? वह तो जड़ की क्रिया है। तेरे योगाभ्यास में कहाँ वह तेरे शून्य हैं।

तेरा शुद्ध वीतरागी विज्ञानघन स्वभाव, उसमें '**जोगजुक्तं**' एकाग्र होकर युक्त होना, उस उपाय से सम्यग्दर्शन अनुभव में आता है। उस साधन से आत्मा का सम्यग्दर्शन ख्याल में आता है और प्रतीति होती है। उसका दूसरा कोई उपाय नहीं। ऐसी क्रिया करो और व्यवहार करो और निमित्त में जुड़ो। समझ में आया? सम्मेदशिखर जाओ, सम्यग्दर्शन हो जायेगा, समवसरण में जाओ सम्यग्दर्शन हो जायेगा। अपने अन्तर स्वभाव समुद्र में प्रवेश करने से सम्यग्दर्शन होगा। समझ में आया?

कहते हैं, '**समयं धुव पदं' वही आत्मा का निश्चय पद है...** समय अर्थात् आत्मा। वह समय अर्थात् आत्मा। देखो, समयसार आता है न? समयसार। समय अर्थात् आत्मा। ध्रुवपद वह आत्मा का निश्चय पद। '**तत्त्व विंदं संविंदि**' वह **तत्त्वज्ञानियों के द्वारा स्वयं अनुभवगम्य है।** स्व वेद्यं। स्व आत्मा से अनुभवगम्य है। '**स्वानुभूत्या चकासते**' '**नमः समयसाराय**' यह गाथा आयी थी न? समझ में आया? सर्व आगम है शास्त्र में। .... उसे मिलान कर कहा है। समझ में आया? उसमें अकेले तत्त्व का बारम्बार घोंटन किया है। तो कहते हैं कि तत्त्वज्ञानी अर्थात् सच्चे ज्ञानी के द्वारा वह स्वयं अनुभवगम्य है।

संमत्तं सुद्ध गुनं सार्धं, सुद्ध तत्त्व प्रकासकं।
सुधातमा सुध चिद्रूपं, सुधं संमिक्दर्सनं ॥३०॥

क्या है सम्यग्दर्शन? अभी तो यह चौथे गुणस्थान की व्याख्या चलती है। **सम्यग्दर्शन...** शुद्धात्मा पदार्थ का गुण है। है गुण, गुण का अर्थ पर्याय। यह तो गुण कहा जाता है। सिद्ध के आठ गुण कहते हैं न? सिद्ध को आठ गुण प्रगट हुए। वह गुण नहीं प्रगटते, पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? गुण तो त्रिकाल रहते हैं। गुण प्रगट नहीं होते। अरे! क्या है? हमारे पण्डितजी कहते यह क्या है? गुण कभी किसी को प्रगट नहीं होते। गुण तो आत्मा में त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... निगोद में भी पड़े हैं और

सिद्ध में भी गुण तो पड़े हैं। यह सिद्ध हैं, वह गुण नहीं, सिद्ध वह पर्याय है। सिद्ध एक परिपूर्ण अवस्था है, गुण नहीं। तो पर्याय में जो अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि आठ गुण प्रगट हुए, वे गुण नहीं, पर्याय है परन्तु गुण के साथ एकाग्रता हुई तो उस पर्याय को गुण कहा जाता है। गुण नहीं। गुण कभी प्रगट नहीं होते। गुण को कभी आवरण नहीं होता। गुण में आवरण होता नहीं। गुण कभी प्रगट होते नहीं। पर्याय में आवरण होता है और पर्याय प्रगट होती है। खबर नहीं, सेठ! पर्याय क्या और गुण क्या? क्या समझ में आया?

जैसे सोना है या नहीं सोना? सुवर्ण—सोना। तो सोना को आवरण होगा? वह तो द्रव्य है। उसमें पीलापन, चिकनापन, वजन जो है, वह तो गुण है। वह तो सदा ही रहते हैं। उसमें कोई आवरण या प्रकाश होता नहीं। उसकी पर्याय कुण्डल, कड़ारूपी की प्रकाश पर्याय होती है। एक पर्याय जाती है और दूसरी पर्याय आती है। पर्याय अर्थात् अवस्था, अवस्था अर्थात् हालत। गुण और द्रव्य तो त्रिकाल है। इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में द्रव्य और गुण तो अनादि-अनन्त एकरूप उसका है। संसारदशा एक आत्मा की विकारी पर्याय है, गुण नहीं।

मुमुक्षु : ज्ञान जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता है। ज्ञान अल्पज्ञ में रहना, वह जानता है। पर्याय में अल्पज्ञ होना, वह ज्ञान का आवरण है। पर्याय में आवरण है, गुण में नहीं। गुण में कभी आवरण नहीं होता। ऐसी बात है। ओहोहो! गजब बात भाई! ज्ञान की वर्तमान पर्याय प्रगट दशा में अल्पता होती है और उसमें सर्वज्ञता होती है। गुण में नहीं, गुण तो त्रिकाल एकरूप रहता है। गुण तो ध्रुव है। देखो न, क्या कहा? आया न! कहाँ आया?

देखो! **सम्यग्दर्शन शुद्ध जीव पदार्थ का गुण है।** इसकी व्याख्या चलती है। गुण का अर्थ पर्याय। **'सार्धं'** पर्याय है। **'सुद्ध तत्त्व प्रकासकं'** देखो, **शुद्ध आत्मतत्त्व का प्रकाश है।** यह तो पर्याय है। त्रिकाल गुण तो त्रिकाल पड़े हैं—ज्ञान-दर्शन-आनन्द, वह शक्ति तो त्रिकाल पड़ी है। जो दोपहर में चलता है वह। उसकी सम्यक् पर्याय प्रगट हो तो मोक्षमार्ग कहने में आती है। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र वह पर्याय है, वह गुण नहीं। मोक्षमार्ग गुण नहीं, मोक्षमार्ग पर्याय / अवस्था है। संसार में भी एक

विकारी अवस्था है और सिद्ध भी एक अवस्था है, केवलज्ञान भी गुण नहीं। केवलज्ञान जो भगवान को प्रगट हुआ, वह गुण नहीं, पर्याय प्रगट हुई है। समझ में आया? कहो, अब पण्डित को, सेठ को खबर न हो तो फिर बाद के तुम्हारे समाज को क्या खबर होगी? तुम्हारे पुत्र-पुत्रियों को कहाँ से खबर होगी? सच्ची बात है। मूलं नास्ति कुतो शाखा। मूल में ही वस्तु नहीं, शाखा कहाँ से आवे?

यह मानो शुद्ध आत्मा है... यह तो पर्याय से अभेद किया, देखो! सम्यग्दर्शन शुद्ध आत्मा है, ऐसा अभेद करके आत्मा कह दिया। है तो पर्याय। उसे गुण भी कहा और आत्मा भी कहा। यह तो अभेद हुआ न? अपनी शुद्ध पर्याय प्रगट कर गुण के साथ अभेद हुई, इसलिए सम्यग्दर्शन को आत्मा भी कहा। **व चेतना स्वभाव है...** चेतना स्वभाव ही चेतन की ज्ञानचेतना हो गयी पर्याय में। **ऐसा यह शुद्ध या निश्चय सम्यग्दर्शन है।** लो! यह शुद्ध कहो या निश्चय सम्यग्दर्शन (कहो), यह निश्चय सम्यग्दर्शन की व्याख्या हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)